ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2023; 9(4): 114-117
www.allresearchjournal.com
Received: 01-02-2023
Accepted: 05-03-2023

डॉ. सविता वर्मा
सह–आचार्य, चित्रकला विभाग,
राजकीय कला महाविद्यालय,
कोटा, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ. सविता वर्मा
सह–आचार्य, चित्रकला विभाग,
राजकीय कला महाविद्यालय,
कोटा, राजस्थान, भारत

बस्तर की ढोकरा हस्तकला : छत्तीसगढ़ के आदिवासियों की परंपरागत कला

डॉ. सविता वर्मा

सारांश
बस्तर अंचल के हस्तशिल्प, चाहे वे आदिवासी हस्तशिल्प हों या लोक हस्तशिल्प, दुनिया–भर के कलाप्रेमियों का ध्यान आकृष्ट करने में सक्षम रहे हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि इनमे इस आदिवासी बाहुल अंचल की आदिम संस्कृति की सोंधी महक बसी रही है। यह शिल्प–परंपरा और उसकी तकनीक बहुत पुरानी है। ढोकरा कला एक खोई हुई मोम की ढलाई धातु कला है जो पीतल की मूर्ति बनाने के लिए 4000 साल पहले की मोम ढलाई तकनीक का उपयोग करती है। यह प्राचीन कला सिंधु घाटी सभ्यता में उत्पन्न हुई और पश्चिम बंगाल तक फैल गई जहां लंबे समय तक जनजातियों द्वारा इसका अभ्यास किया गया और जो सदियों से झारखंड, ओडिशा, छत्तीसगढ़ के साथ–साथ केरल और राजस्थान जैसे राज्यों में चली गईं और आधुनिक पाकिस्तान के बड़े हिस्से में फली–फूली। इस कला की सबसे प्रसिद्ध रचनाए जिसे ढोकरा कहा जाता हैए सिंधु घाटी सभ्यता के केंद्र मोहनजोदारो से भी संबंधित है, यह एक कला है जो संग्राहकों के साथ–साथ रचनाकारों को सिंधु घाटी सभ्यता से जोड़ती है।

कूटशब्द : जनजातीय, संस्कृति, हस्तशिल्प, अक्षुण्ण, धातुशिल्प, कुंडलित, सौन्दर्यपरक, आनुष्ठानिक

प्रस्तावना
भारत के आदिवासी कलाओं में बस्तर की आदिवासी परंपरागत कला कौशल प्रसिद्ध है। जनजातीय कलाओं में प्रमुख बस्तर कला है, जो भारत के बस्तर–क्षेत्र के आदिवासियों द्वारा प्रचलित है, और अपने अद्वितीय कलाकृतियों के लिए दुनिया भर में जाना जाता है। बस्तर के आदिवासी समुदाय अपनी इस दुर्लभ कला को पीढ़ी दर पीढ़ी संरक्षित करते आ रहे है, परन्तु प्रचार के आभाव में यह केवल उनके कुटीरों से साप्ताहिक हाट बाजारों तक ही सीमित है। उनकी यह कला बिना किसी उत्कृष्ट मशीनों के उपयोग के रोजमर्रा के उपयोग में आने वाले उपक्रमों से ही बनाये जाते हैं। बस्तर के कला कौशल को मुख्य रूप से काष्ठ कला, बाँस कला, मृदा कला, धातु कला में विभाजित किया जा सकता है। काष्ठ कला में मुख्य रूप से लकड़ी के फर्नीचरों में बस्तर की संस्कृति, त्योहारों, जीव जंतुओं, देवी देवताओं की कलाकृति बनाना, देवी देवताओं की मूर्तियाँ, साज सज्जा की कलाकृतियाँ बनायी जाती है। बांस कला में बांस की शीखों से कुर्सियां, बैठक, टेबल, टोकरियाँ, चटाई, और घरेलु साज सज्जा की सामग्रिया बनायीं जाती है। मृदा कला में, देवी देवताओं की मूर्तियाँ, सजावटी बर्तन, फूलदान, गमले और घरेलु साज–सज्जा की सामग्रियां बनायी जाती है। धातु कला में ताम्बे और टिन मिश्रित धातु की ढलाई की हुई कलाकृतियाँ बनायीं जाती है, जिसमें मुख्य रूप से देवी देवताओं की मूर्तियाँ, पूजा पात्र, जनजातीय संस्कृति की मूर्तियाँ, और घरेलु साज–सज्जा की सामग्रियाँ बनायीं जाती है।
आदिवासी निश्चित रूप से भारत के पहली धातु स्मिथ थे और वे अभी भी प्राचीन अभ्यास के साथ जारी हैं। ये जनजातीय कलाकार धातु की पुरानी प्रक्रियाओं के माध्यम से, जीवन, प्रकृति और देवताओं के अनूठे दृश्य को लोहे में उकेरते हैं। उनकी प्रक्रिया सरल है, इसमें मूल रूप से धातु को भट्टी और हथौड़ा द्वारा रूप देना है। बस्तर अंचल के हस्तशिल्प, चाहे वे आदिवासी हस्तशिल्प हों या लोक हस्तशिल्प, दुनिया–भर के कलाप्रेमियों का ध्यान आकृष्ट करने में सक्षम रहे हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि– इनमें इस आदिवासी बहुल अंचल की आदिम संस्कृति की सोंधी महक बसी रही है। यह शिल्प–परंपरा और उसकी तकनीक बहुत पुरानी है। बस्तर की कुछ परम्पराएं तो आपको एक रहस्यमय संसार में पंहुचा देती हैं। वह अचंभित किए बगैर नहीं छोड़ती। वनवासियों के तौर तरीके हमें सोचने पर मजबूर करते हैं कि चांद पर पहुंच चुकी इस दुनिया में और भी बहुत कुछ है, जो सदियों पुराना है, अपने उसी मौलिक रूप में जीवित है।

इस परम्परागत कला में, इतिहास एवं संस्कृति के अनेक उतार चढ़ाव कांस्य युग से वर्तमान युग तक की लम्बी परम्परा में सुरक्षित है। साढ़े चार पांच हजार वर्षों की यह समृद्ध कला परम्परा आज तक सुरक्षित व थोड़े परिवर्तनों के बावजूद अक्षुण्ण चली आ रही है। आदिवासी समाज ने इस कला परम्परा में किसी प्रकार का हस्तक्षेप किया बिना इसे धरोहर के रूप में न सिर्फ सुरक्षित रखा वरन इसे जीवन्त भी बनाये रखा।

छत्तीसगढ़ के विभिन्न अंचलों में धातुशिल्प निर्माण की सुदीर्घ परम्परा है। प्रदेश के आदिवासी कलाकार पारम्परिक रूप से धातु की ढलाई कर आकर्षक कृतियों का निर्माण करते हैं। ये आदिवासी कलाकार सदियों से सौन्दर्यपरक, आनुष्ठानिक और उपयोगी कलाकृतियों का निर्माण अंचल के लोगों की आवश्यकता और सौन्दर्य चेतना के अनुसार सहज रूप से बनाते आ रहें है। जिनमें सरगुजा के मलार, रायगढ़ के झारा, बस्तर के घड़वा और लोहार प्रमुख है। मध्य प्रदेश में भी धातु ढलाई का अनुपम कार्य हो रहा है जिनमें टीकमगढ़ के स्वर्णकार और बैतूल के भरेवा कलाकारों ने आज तक अपनी परम्परा को जीवित रखा है।

नवीन प्रयोगों और विकसित स्वरूपों में छत्तीसगढ़ क्षेत्र का ढोकरा शिल्प एक उद्योग का रूप लेता जा रहा है। ढलाई की सीमा के बावजूद टुकड़ों–टुकड़ों में बनाकर वृहदाकार शिल्पों के निर्माण में वे सफल रहें है। अनेक शिल्पी मिलकर एक शिल्प के निर्माण में सहयोग करते है। कोण्डागांव जगदलपुर, करनपुर, ऐराकोट आदि गांव इस कला के केन्द्र बनते जा रहें है। अब ये शिल्प नये प्रतीकों और स्वरूपों के आयाम की ओर अग्रसर है।

छत्तीसगढ़ की राजधानी रायपुर से करीब 215 किलोमीटर दूर कोंडागाँव जिले के भेलवापारा मोहल्ले में जैसे–जैसे अंदर जाएंगे हर घर में मूर्तियां ढालते, मोम और मिट्टी चढाते लोग मिल जाएंगे। सबके काम बंटे होते हैं, कोई मिट्टी बनाता हैए तो सांचा तो कोई मोम से डिजाइन बनाता है। कई परिवार मिलकर मूर्तियां ढालने का काम करते हैं। ढोकरा शिल्प की मूर्तियां जितनी खूबसूरत होती हैंए उतनी ही मेहनत इन्हें बनाने में लगती है। शिल्पकार तरूण नाग बताते हैं, 'ढोकरा आर्ट' को बनाने का काफी लंबा प्रोसेस होता है, कम से कम 12–14 प्रोसेस, प्रक्रिया, से गुजरना पड़ता है, भेलवापारा में सौ अधिक ऐसे परिवार हैं जो मूर्ति बनाने का ही काम करते हैं। यहां की मूर्तियां दूर–दूर से लेने लोग आते हैं।

छत्तीसगढ़ में ढोकरा कला का इतिहास

ढोकरा कला एक खोई हुई मोम की ढलाई धातु कला है जो पीतल की मूर्ति बनाने के लिए 4000 साल पहले की मोम ढलाई तकनीक का उपयोग करती है। यह प्राचीन कला सिंधु घाटी सभ्यता में उत्पन्न हुई और पश्चिम बंगाल तक फैल गई जहां लंबे समय तक जनजातियों द्वारा इसका अभ्यास किया गया और जो सदियों से झारखंड, ओडिशा, छत्तीसगढ़ के साथ–साथ केरल और राजस्थान जैसे राज्यों में चली गईं और आधुनिक पाकिस्तान के बड़े हिस्से में फली–फूली। इस कला की सबसे प्रसिद्ध रचनाए जिसे ढोकरा कहा जाता हैए सिंधु घाटी सभ्यता के केंद्र मोहनजोदारो से भी संबंधित है, यह एक कला है जो संग्राहकों के साथ–साथ रचनाकारों को सिंधु घाटी सभ्यता से जोड़ती है जो उत्तर.पश्चिमी भारत की संस्कृति पर आधारित मूर्तियां बनती हैं। इनमें भी दो तरह की मूर्तियां बनती हैं, पहली देवी–देवताओं की, जिसमें पहला देवी–देवताओं के शिल्प जिनमें, घोड़े पर सवार देवियां हैं, या जो हाथों में खड्ग, ढाल, अन्न की बालियां व मयूर पंख धारण कि हुए हैं जैसे तेलगिन माता मूर्ति, कंकालिन माता। और दूसरी पशु आकृतियां जिनमें हाथी, घोड़े की आकृति प्रमुख हैं। इनके अलावा शेर मछली कछुआ मोर भी बनाए जाते हैं। आज लोक कलाओं में प्रयुक्त प्रतीक एक लम्बी सांस्कृतिक प्रक्रिया द्वारा प्रदत्त है। धार्मिक विश्वासए अदृश्य शक्ति के प्रति अटूट आस्थाए परस्पर संबंधों के प्रति गहन जिज्ञासा इत्यादि विश्वासों की पृष्ठभूमि में अनेक प्रतीक विकसित हुए है। जिनकी लोक जीवन में गहरी जड़ें हैं। आज इन शिल्पों में जो ज्यामितीय अलंकरण या पशु पक्षी वृक्षों के सरल सहज आकार हमें प्रतीकों के रूप में प्राप्त होते हैं। वे वास्तव में उतने सरल नहीं है। ये अत्यंत परिष्कृत एवं सूक्ष्म आकारों का कलात्मक अमूर्तन हैं।

ढोकरा शुरू में खानाबदोश कारीगरों के एक समूह को संदर्भित करता था। ढोकरा कला को जीवित रखा गया है और इस कला की अनूठी सुंदरता के कारण अब तक कई राज्यों में आदिवासी लोगों द्वारा इसका उपयोग किया जाता है, जिसमें मोम कास्टिंग तकनीकों के माध्यम से धातु के शिल्प बनाए जाते प्रत्येक कलाकृति एक कठिन प्रक्रिया के माध्यम से बनाई जाती है और इस प्राचीन जनजातीय कला में कई चरण होते हैं जिन्हें पूरा करने में कई दिन लग जाते हैं और इसके लिए तीन अलग–अलग प्रकार की मिट्टी की आवश्यकता होती है।

एक मूर्ति बनाने की प्रक्रिया काफी लंबी होती है। हर एक चरण में मिट्टी का प्रयोग होता है। 'सबसे पहले हम मिट्टी का एक ढांचा तैयार करते हैं, जिसमें काली मिट्टी को भूसे के साथ मिलाकर पहले उसका बेस बनता है। काली मिट्टी जब सूख जाती है तो उसके बाद लाल मिट्टी से उसपर लेपाई की जाती है, जिससे वो फटे नहीं। लाल मिट्टी से लेपाई करने के बाद मोम का उस पर लेप लगाते हैं। जब वो मोम सूख जाता है तो अगले प्रोसेस में मोम के पतले धागे से उसपर बारीकी से डिजाइन बनाते हैं। जब ये सूख जाता है तो अगले चरण में मूर्ति को मिट्टी से ढक देते हैं। इसके बाद इसे सुखाते हैंए सुखाने के लिए धूप का ही सहारा होता प् उसके बाद उसे फिर मिट्टी से ढंकते हैंए मिट्टी से ढकने यछपाई करने को छेना धराना बोलते हैं, उसके बाद उसको दो–तीन मिट्टी से कवर करने के बाद पीतल, टीन, तांबे जैसी धातुओं को पहले हजार डिग्री सेल्सियस पर गर्म करके पिघलाते हैं। इनको गर्म करने के लिए ठोस धातु के पात्र में पिघलाते हैं, इसे पिघलाने में चार. पांच घंटे का समय लगता है। तब ये पूरी तरह से पिघलता है। इसके साथ ही जो ढांचा होता है उसे भी अलग सी भट्ठी में गर्म करते हैं और जब ये पूरी तरह गर्म हो जाएगा जो मिट्टी के अंदर का मोम होता है, वो पिघलता है उसी खाली स्थान पर जो धातु पिघलाई गई है, उसे इस ढांचे में धीरे–धीरे डालेंगे, तो जो मोम की जगह होती है, पीतल उसे ढक देता है। फिर उसे चार–छह घंटे तक ठंडे होने के लिए रखते हैं, ठंडा होने के बाद छेनी–हथौड़ी से मिट्टी निकालते हैं अगर मिट्टी फिर भी नहीं निकलती है तो उसे ब्रश से साफ करते हैं।

बस्तर अंचल के हस्तशिल्प, चाहे वे आदिवासी हस्तशिल्प हों या लोक हस्तशिल्प, दुनिया–भर के कलाप्रेमियों का ध्यान आकृष्ट करने में सक्षम रहे हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि इनमे इस आदिवासी बाहुल अंचल की आदिम संस्कृति की सोंधी महक बसी रही है। यह शिल्प–परंपरा और उसकी तकनीक बहुत पुरानी है। देवी त्यौहार–तीज त्यौहार, चौतराई, आमाखानी, अकती, बीज खुटनी, हरियाली, इतवारीए नयाखाई आदि बस्तर के आदिवासियों के मुख्य त्यौहार हैं। आदिवासी समुदाय एकजुट होकर बूढ़ादेव – ठाकुर दाई, रानीमाता, शीतला, रावदेवता, भैंसासुर, मावली, अंगारमोती, डोंगर, बगरूम आदि देवी देवताओं को पान फूल, नारियल, चावल, शराब, मुर्गा, बकरा, भेड़, गाय, भैंस, आदि देकर अपने–अपने गांव–परिवार की खुशहाली के लिए मन्नत मांगते है।

साल 2012 में छत्तीसगढ़ के बस्तर से अलग हुए कोंडागाँव के भेलवापारा मोहल्ले में ऐसे सैकड़ों परिवार हैं जो ढोकरा शिल्पकला से मूर्तियों में जान डाल देते हैं। इन शिल्पकारों की बदौलत ढोकरा शिल्प की पहचान देश–विदेश तक हो गई है, ढोकरा आदिवासी कला की विशिष्टता यह है कि 'कोई भी ढोकरा की नकल नहीं कर सकता। इन कारीगरों द्वारा बनाया गया प्रत्येक टुकड़ा अपने विशेष तरीके से अद्वितीय है। कोई भी दो ढोकरा कला के टुकड़े एक जैसे नहीं होते हैं, और हर एक कला को श्रमसाध्य रूप से एक तरह से तैयार किया जाता है। एक पतला शरीर, पतले हाथ और पैर और कुंडलित सतह अलंकरण के साथ, ढोकरा के टुकड़े अद्वितीय दिखते हैं। कारीगर प्रकृति, वनस्पतियों, जीवों, पौराणिक

कथाओं और सरल अनुष्ठानों से प्रेरणा लेते हैं और इन्हें अपनी कलाकृति के माध्यम से प्रदर्शित करते हैं।

ढोकरा की सुंदरता यह है कि कला के टुकड़े सही नहीं होते हैं, कुछ ही प्रतिभाशाली लोग हैं जो ऐसा कर सकते हैं लेकिन प्रत्येक कला को बनाने में समय लगता है और यही कारण है कि उत्पादन कम होता है। यह समय लेने वाला, बहुत विस्तृत और जटिल शिल्प है। ढोकरा क्राफ्ट की विशिष्ट उपस्थिति इसकी प्राचीन और निराली फिनिश और देहाती लुक के कारण है। अपने सतत् प्रयास से आज ये शिल्पी श्रेष्ठतम एवं उत्कृष्ट कलाकृतियों का निर्माण कर रहें हैंए और समकालीन जगत में अपने ही प्रयासों से उच्चतम शिखर की ओर अग्रसर हो रहें है और वह दिन भी दूर नहीं जब इन शिल्पियों को हेनरी मूर, हुसैन, शंकु चौधरी के समान सम्मान प्राप्त होगा।

संदर्भ

1. स्तर कला, http://www.bastararts.com/manufacturing.asp
2. मल्लिक, अनुराग, ''वैक्सिंग एलोपुएंट : एकताल क्राफ्ट विपेज'' रेडस्कारब, 2016
3. नंदन, आयुश्री– 'ढोकरा कलारू बंगाल से पीतल का असामान्य शिल्प। कोलकाता', मैश इंडियाए 2013
4. कोचर, राजेश, 'ढोकरा : मेटल कास्टिंग की पारंपरिक कला', चित्रलेखा इंटरनेशनल मैगजीन ऑन आर्ट एंड डिजाइन, 2011
5. चटर्जी, सुभ्रजीत, 'धोकरा का प्राचीन शिल्प : पश्चिम बंगाल में बीकना और दरियापुर में एक केस स्टडी', विद्वान प्रकाशन, 2015
6. https://gaatha.org/igaatha/details_craft/Crafts/Dhokra-metal-cr aft/Research-Tribal-dhokra-Art-
7. मल्होत्रा, निधि, 'ढोकरा कला में विकास', इस्सू, 2019
8. मोनोग्राफ घड़वा शिल्प–म,प्र. आदिवासी लोक कला परिषद प्रकाशन
9. चौमासा अंक 8 वर्ष 3 पृष्ठ 64 निरंजन महावर
10. छत्तीसगढ़ में कला प्रयोग, डॉ. उमेश मिश्र
11. शोध प्रबंध–बस्तर क्षेत्र के लोक धातु शिल्प स्वयं